P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-5* ISSUE-11* (Supplementary Issue) July- 2018
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

हिन्दू राष्ट्र और सम्प्रदायवाद

सारांश

प्रस्तुत शोध–पत्र में साम्प्रदायिकता के साथ हिन्दू–राष्ट्रवाद के सम्बन्ध को बताने का प्रयास किया गया है। इसके लिए'भारतीय राष्ट्रवाद'का अर्थ और उसके विकास को ऐतिहासिक सन्दर्भ में देखा गया है। इसके साथ ही इसके अंतर्गत् यह बताने का भी प्रयास किया गया है कि यह 'हिन्दू–राष्ट्रवाद' के कितना समानार्थी है। चूँकि वर्तमान में भारतीय समाज की अनेक गंभीर समस्याओं में एक समस्यो साम्प्रदायिकता भी है अतः इस शोध–पत्र के माध्यम से यह जानने का प्रयास किया गया है कि किस प्रकार अनेक ऐतिहासिक और समकालीन मुद्दों ने भारत में साम्प्रदायिकता के विकास में योगदान दिया है तथा हिन्दू–राष्ट्र का विचार इसमें किस प्रकार की भूमिका निभा रहा है।

मुख्य शब्द : सनातन, राष्ट्रवाद, साम्प्रदायिकता, मेसोपोटामिया, बेबीलोन, मिस्र, अल्पसंख्यक।

सुधीर कुमार
शोधार्थी,
राजनीति विज्ञान विभाग,
ल०ना०मि०विश्वविद्यालय,
कामेश्वर नगर, दरभंगा, बिहार

प्रस्तावना

भारतीय संस्कृति को सनातन संस्कृति के नाम से भी जाना जाता है। इसका कारण यह है कि इसकी उत्पत्ति की निश्चित तिथि बता पाना संभव नहीं है। ऐसी मान्यता है कि मानव की उत्पत्ति के साथ ही इस संस्कृति का उद्भव हुआ और तब से यह निरंतर विद्यमान है। यही कारण है कि इसे सनातन संस्कृति के नाम से जाना जाता है। मानवीय सभ्यता के इतिहास में हमें अनेकों ऐसी संस्कृतियों के सन्दर्भ में पढ़ने को मिलता है जो अब अतीत बन चुकी हैं, उदाहरण स्वरूप– मेसोपोटामिया, बेबीलोन और मिस्रकी सभ्यता और हाल ही खोजी गयी माया सभ्यता आदि।

जब हम उपर्युक्त वर्णित सभ्यताओं और वर्तमान में उपस्थित अन्य मान्यताओं के साथ भारतीय संस्कृति की तुलना करते हैं, तो अनेक ऐसी बातें सामने आती हैं जिन्हें हम इस संस्कृति की निरंतरता के कारणों में व्यक्त कर सकते हैं। इन कारणों में प्रमुख हैं– विरोधी मान्यताओं को स्थान देना, विविधता को स्वीकार करना, अंतिम सत्य जैसा कुछ भी नहीं है कि धारणा, उपासना की विविध पद्धतियों को फलने–फूलने देना, सत्य हेतु सदैव प्रयासरत रहना, अपनी मातृभूमि व प्रकृति के सभी तत्त्व जिनसे जीवन संभव है उनके प्रति सम्मान और कृतज्ञता अर्पित करना।

उपर्युक्त सन्दर्भों की चर्चा यदि हम आगे बढ़ाते हैं तो पहले यह समझना होगा कि हिन्दू शब्द कि उत्पत्ति कैसे हुई है और हिन्दू–राष्ट्र का आशय क्या है। हिन्दू शब्द की उत्पत्ति मूलतः सिन्धु नदी से सम्बंधित है जिसे अरबी लोग उच्चारण न कर सकने के कारण हिन्दू बोलते थे। इस शब्द का प्रयोग मूलतः सिन्धु नदी के पूर्व में रहने वाले लोगों के लिए किया गया। अतः यह समझने की आवश्यकता है कि हिन्दू शब्द एक भौगोलिक पहचान है जो भारतीय भूमि पर रहने वाले लोगों के लिए प्रयुक्त किया गया है। अतः हिन्दू–संस्कृति वह संस्कृति है जो इस भूमि पर रहने वाले लोगों ने विकसित की।

हिन्दू–राष्ट्र से आशय

राष्ट्र और कुछ नहीं बल्कि किसी भू–भाग में रहने वाले लोगों की आस्था का केंद्र होता है। यह एक ऐसी भावना होती है जो उस क्षेत्र में रहने वाले लोगों को एकता के सूत्र में बांधे रहती है। महर्षि अरविन्द ने किसी भी राष्ट्र के लिए चार तत्वों को आवश्यक बताया है–

1. भौगोलिक एकता
2. साझा अतीत
3. सामान्य हित
4. अनुकूल राजनीतिक परिस्थितियां

इसलिए भारतीय राष्ट्रवाद पश्चिमी राष्ट्रवाद से भिन्न है। यह समान नृजातीयता पर आधारित नहीं है। इसलिए जब भी हम हिन्दू–राष्ट्रवाद की बात करते हैं तो यह भारत भूमि पर रहने वाले उन समस्त लोगों को अपने में समाहित करने की बात करता है जो इस भूमि के प्रति अपनी आस्था प्रकट करते हैं। भारतीय संस्कृति और हिन्दू धर्म इन दोनों के सन्दर्भ में जानकारी प्रदान करने वाले ग्रंथों में एक रामायण भी है तथा दोनों की आस्थाओं की विविधता का आधार है।

भारत में साम्प्रदायिकता की स्थिति और हिन्दू–राष्ट्र का विचार

शताब्दियों तक हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, इसाई, पारसी तथा अन्य धर्मों के अनुयायी एक दूसरे के साथ भाईचारे के भाव से रहते आ रहे हैं और धार्मिक आस्थाओं सहित लगभग सभी क्षेत्रों में सांप्रदायिकता भारतीय संस्कृ ति और हिन्दू धर्म तथा उनके आधार स्तम्भ नैतिक मूल्यों की रक्षा नहीं करती, बल्कि बदनाम करती है । इसलिए यह भारतीय संस्कृति और हिन्दू धर्म इन दोनों के लिए एक खतरे की घंटी है। इस खतरे का मूल कारण राजनीतिक चेतना है,क्योंकि ब्रिटिश उपनिवेशी शासन की समाप्ति के बाद भी हमारे पास सांप्रदायिकता रूपी रोगों ने साथ नहीं छोड़ा है। कुछ मामलों में यह पुरानी आदतों के कारण या फिर हमारी राजव्यवस्था में कुछ ऐसे तबके हैं जो अपने संकीर्ण एवं वर्गगत हितों की पूर्ति के लिए भारतीय राष्ट्र को विभाजित करने के लिए सांप्रदायिकता का आज सहारा लिए हुए है। एक बार पंडित नेहरु ने सांप्रदायिकता को भारत के फासीवाद के रूप में वर्णित करते हुए कहा था कि यद्दपि सभी प्रकार की सांप्रदायिकता बुरी होती है,चाहे वह हिन्दू सांप्रदायिकता हो या मुस्लिम।सांप्रदायिकता के मसले पर किसी भी तरह का समझौता नहीं किया जा सकता है, क्योंकि वह भारतीय राष्ट्रीयता तथा राष्ट्रवाद की एक चुनौती है। हमें याद रखने की आवश्यकता है कि अल्पसंख्यक सांप्रदायिकता शंका,भय या भयाक्रान्तता से जन्म लेती है,जबकि बहुसंख्यक सांप्रदायिकता राजनीतिक प्रतिक्रिया के फलस्वरूप पैदा होती है।

वर्तमान परिस्थिति में साम्प्रदायिकता के बढ़ावा देने में कहीं न कहीं राजनीति का भी बड़ा योगदान है, चाहे वह अतीत में हुई ज्यादती को सामने लाने को लेकर हो या फिर वोट–बैंक के लालच में तुष्टिकरण कि नीति को अपनाये जाने के कारण हैद्य सम्प्रदायवादी अन्तर साम्प्रदायिक फूट और तनाव को बढ़ावा देने के लिए अतीत को वर्तमान की एक कड़ी के रूप में प्रयोग करना चाहते हैं और अपने अतीत को पाना चाहते हैंद्य अनेकों बार कट्टरपंथी नेताओं द्वारा सुनने को मिलता है कि भारत में अल्पसंख्यक अच्छीत स्थिति में नहीं है तथा अच्छीर स्थिति में स्वयं को लाने के लिए मध्यकालीन युग में स्थापित मुस्लिम शासन को पुनः स्थापित करना होगाद्य इसी प्रकार हिन्दू साम्प्रदायिकता को बढ़ावा देने के लिए मध्यकालीन युग में हुए अत्याचार को आधार बनाया जाता हैद्य इन ताकतों के द्वारादूसरी धार्मिक आस्था रखने वाले प्राचीन और मध्यकालीन राजाओं को सामंती निरंकुशता, धार्मिक कट्टरता,राजवंशीय महत्वाकांक्षा के पर्याय के रूप में उसे चित्रित किया जाता है तथा उनके साम्राज्य निर्माण की प्रवासी गतिविधियों को सिर्फ चढ़ाई,कब्जा,विजय,बर्बरता तथा निरंकुशता के रूप में उन्हें देखते हैं। राजवंशीय तथा आनुवांशिक शासकों, साम्राज्य निर्माताओं और अधिपतियों ने प्रायः अपने समुदाय में अपनी झूठी मान्यता और प्रतिष्ठा अर्जित करने के लिए झूठे कार्यों में अधिक रुचि ली और झूठी आकांक्षा के लिए धार्मिक उपदेश का झूठा लवादा पहनाकर उन्होंने सेना,नौकरशाही,पुरोहिताई और मौलवियाई की भावनाओं और आवेगों का अनुचित लाभ उठाया।

किसी समुदाय के कुछ पूर्व सदस्यों विशेषतया सामन्ती अधिपतियों और दुराचारी,बेईमान शासकों के सही या गलत कार्यों के कारण आज उस समुदाय के निर्दोष सदस्यों को दण्डित करना ही सांप्रदायिकता है । दंगे की उन्माद या पागलपन में किसी इन्सान पर आक्रमण करना और उसकी हत्या करना सिर्फ इसलिए कि वह दूसरे समुदाय के सदस्य हैं,सांप्रदायिकता का बहुत ही वीभत्स और घिनौना रूप है। समाज और व्यवसाय विशेषकर राजनीति और संचार माध्यम में विशेषाधिकृत पद का अनुचित प्रयोग करके अपने भाषण,अभिव्यक्ति और प्रकाशन से सांप्रदायिक विद्वेष और घृणा को प्रेरित करना, उकसाना या बढ़ावा देना अनैतिकता तथा प्रत्यक्ष रूप से सांप्रदायिकता है। सांप्रदायिक भावनाओं को उजागर, सांप्रदायिक त्योहारों,कर्मकाण्डों,चित्रों,गीतों, नाटकों आदि का प्रयोग सांप्रदायिकता का प्रोत्साहन है।

आज संपूर्ण देश में सांप्रदायिकता ने बहुत बड़े रूपों में एक बहुत बड़ी खतरनाक रूप धारण कर लिया है, जो हमारे लिए एक जबरदस्त चुनौती है। सांप्रदायिकता यहां की राष्ट्रवादी पहचान का अपमान है जो विकासमान निरपेक्ष संस्कृति में एक अनर्थकारी गतिरोध है। यह हमारी राजनैतिक स्थायित्व का विनाशक ही है। सांप्रदायिक भावना से अंधे होकर लोग एक दूसरे की हत्या करके सही मायने में अपने राष्ट्र तथा परिवार की अपनी मानववादी तथा गौरवशाली संस्कृति परम्पराओं की हत्या कर रहे हैं। इसलिए हमारी धर्मनिरपेक्ष लोकतांत्रिक व्यवस्था के लिए सांप्रदायिकता एक बड़ा शत्रु है।

सांप्रदायिकता आधुनिक राजनीति का ही परिणाम है जो मध्ययुगीन या प्राचीन 1857 के पूर्व की राजनीति से बिल्कुल अलग–थलग थी। सांप्रदायिकता, यहां तक कि राष्ट्रवाद और समाजवाद भी राजनीति तथा विचारधारा के रूप में तभी उभरकर सामने आ सके,जब तक राजनीति के स्वरूप में संरचनात्मक व्यवधान आया। हिन्दू और मुस्लिमों में राजनीति की दृष्टि से हिन्दुओं और मुसलमानों के रूप में या भारतवासियों के रूप में भारतीय राजनीतिक दृष्टि से संगठित होने की धारणा तभी संभव हुई जब आम जनता राजनीति का सक्रिय हिस्सा बन सकी । यही कारण था कि उपनिवेशी शासकों ने 1905 तक मुसलमानों को राजनीति से अलग–थलग रखने का प्रयास किया। सांप्रदायिकता उग्रपंथी या फासीवाद रूपी तभी धारण कर सकी,जब 1937 के बाद लोगों को बड़े स्तर पर संगठित करने और उनसे अपील कर मतदान के अधिकार में वृद्धि

और राष्ट्रीय आन्दोलन में तेजी से प्रगति के कारण ही यह आवश्यकता महसूस हुई।

जब कोई आदिम भावना नहीं थी, उस समय हमारी परम्परा में सांप्रदायिक धारणा विद्यमान नहीं थी। सांप्रदायिक चेतना हमें विरासत में नहीं मिला था, यह न सिर्फ आज विद्यमान है बल्कि आज की ही वस्तु है । यह आज के कतिपय समूहों सब स्तरों और वर्गों की सामाजिक आवश्यकताओं और लक्ष्यों की पूर्ति करती है। सांप्रदायिकता उपनिवेशी राजनीति का पासा बन गयी थी,जिसे किसी भी तरह विगत का अवशेष बनाकर प्रस्तुत नहीं किया जा सकता है। यह स्पष्ट है कि सांप्रदायिकता के सामाजिक मूल ही नहीं, इसके सामाजिक,आर्थिक और राजनीतिक लक्ष्य भी आधुनिक ही थे,वे वर्तमान के ही थे। इसका पोषण तो आज के समकालीन सामाजिक संगठन द्वारा किया गया है।

हिन्दू,मुस्लिम, सिक्ख और इसाइयों के अलग राष्ट्र या अलग राष्ट्रीयता होने की बात दो दूर,बल्कि वे धार्मिक कृत्यों के अतिरिक्त अपने आप में एकीकृत समुदाय भी नहीं है। उनकी अलग से कोई सामाजिक संरचना या धर्म के अधार पर कोई गठित इकाई भी नहीं है जिसके साझे आर्थिक,राजनीतिक,सामाजिक या सांस्कृतिक हित हों या आपस में बांधने वाले कोई दृष्टिकोण हो। हिन्दुओं और मुसलमानों के कोई ऐसे हित नहीं थे,जो स्पष्ट होकर सामने आ सके। विशेष रूप से हिन्दू और मुसलमान किसानों और कामगारों की स्थिति एक जैसी थी। सम्प्रदायवादी अपने समुदाय के हितों की रक्षा करने की बात करता है,किन्तु वास्तविक जीवन में धार्मिक क्षेत्र के बाहर ऐसे कोई हित नहीं थे।

हिन्दू और मुसलमानों के लिए अखिल भारतीय या आंचलिक स्तर पर भी किन्ही ऐसे हितों का अस्तित्व नहीं था। एक पत्र के अनुसार–हिन्दू ,मुसलमान, जाट हिन्दू और मुसलमान गूजर अपने उन साझे पुरखों के बारे में तो अधिक सोचते हैं, जिनकी वे संतान हैं, वनिस्ब इसके कि वे अपने हिन्दू या मुसलमान होने के बारे में सोचें। वे एक ही गांव में शांतिपूर्वक मिल–जुलकर इस प्रकार रहते हैंकि मानो वे एक जाति तथा धर्म के लोग हों। मुसलमानों के बीच नस्ल,जाति और रुतबे तथा आर्थिक आधारों पर विद्यमान विभाजनों की चर्चा करते हुए रॉविन्सन का मानना है कि मुसलमान एक समुदाय के होने के स्थान पर विभिन्न प्रकार के हितों के समूह थे। हिन्दू भी मुसलमानों से कम विभाजित नहीं थे। जैसे शहर मे कसाई या गावों के कट्टर जुलाहे मुसलमानों में आपस में धर्म के अतिरिक्त अधिक कुछ साझा नहीं था और हिन्दू मूलतः धर्म के आधार पर ही बंटे हुए थे। इस प्रकार सांप्रदायिकता हिन्दू,मुस्लिमों के बीच एक खाई के रूप में काम करती आ रही है।

निष्कर्ष

अतः आज भी सामाजिक, सांस्कृतिक और क्षेत्रीय–स्तर पर भारत के विभिन्न धर्मानुयाईयों में अधिक अंतर नहीं देखने को मिलता। वे एक–दूसरे के साथ मिल–जुलकर आराम से जीवन–यापन करते हैं। एक भारतीय अपने दिन–भर की गतिविधि में अनेक धर्मों के लोगों से बिना किसी भेदभाव या इर्ष्या के मिलता रहता है। इन सबके बावजूद आज समाज में अनेक बार तनाव की स्थिति देखने को मिलती है। इस तरह के तनाव के पीछे राजनीतिक दल और अनेक सांप्रदायिक संगठन भूमिका निभाते हैं। अतः भारत में साम्प्रदायिकता के लिए जिम्मेदार यहाँ की राजनीति है जो सांप्रदायिक आधार पर यहाँ के नागरिकों को संगठित, प्रेरित और उकसाने का कार्य करती है। हिंदू–राष्ट्र का विचार यदि अपने सही अर्थों में देखा जाय तो यह सबको समाहित करने की बात करता है, परन्तु संकीर्ण राजनीतिक सोच और राजनीति ने इसके अर्थ को संकीर्ण बना दिया है जिससे कि अल्पसंख्यकों के अन्दर भय उत्पन्न होता रहेद्य जिस कारण साम्प्रदायिकता का विकास होता है।

संदर्भ

1. *चन्द्र, बिपिन (1996). आधुनिक भारत में सांप्रदायिकता, हिंदी माध्यम कार्यन्वय निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय*
2. *भारत और लोकतंत्र, भाग–1 वर्ग ग्प्, पृ०–209*
3. *उपर्युक्त –पृ० वही*
4. *उपर्युक्त– पृ० वही*
5. *चन्द्र, बिपिन (1996). आधुनिक भारत में सांप्रदायिकता, हिंदी माध्यम कार्यन्वय निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय, पृष्ठ संख्या) – 7*
6. *उपर्युक्त पृ०– वही*
7. *रुट्स ऑफ कम्युनल पॉलिटिक्स, संपा–एस.जी. वैरियर–1965 पृ०–161*
8. *एस.एस. पोरजादा फाउण्डेशन ऑफ पाकिस्तान, ऑल इण्डिया मुस्लिम लीग पॉलिसी 1937–47, पृ०–252*
9. *27 दिसम्बर 1900 को रोहतक के डिप्टी–कमिश्नर द्वारा दिल्ली के सम्भागीय कमिश्नर को लिखा गया पत्र ।*
10. *रॉविन्सन फ्रांसिस–सेप्रेटिज्म एमॉग इण्डियन मुस्लिम, द पॉलिटिक्स ऑफ यूनाइटेड प्रोविन्सेज मुस्लिम–1860–1903, 1975 – पृ०– 24–33*
11. *https%//ia801602-us-archive-org/25/items/in-ernet-dli-2015-204449/2015-204449-Nationalism&In-pdf*